# पुरातन काल से वंदनीय गौ माता

*डॉ. भास्कर शर्मा

**शोध सारांश –**

गाय की पवित्रता में विश्वास, जो भारतीय की प्रमुख विशेषता है। भारतीयों को उत्तराधिकार में प्राप्त है। गाय को राष्ट्रीय पशु का दर्जा व सम्मान प्राप्त हुआ है, वह अभिनंदनीय है।

गौ के इस अनुपम महत्ता और लोक में सम्मान मिला, उसके मूल में भारतीयता के आधारभूत ग्रन्थों के उन प्रशस्ति वाक्यों को गिना जाना चाहिये, जिन्होंने गौ महिमा की प्रतिष्ठा को वर्णित किया।

ऋग्वेद से लेकर वर्तमान काल तक के साहित्य में गौ महिमा के कथन सर्वत्र प्राप्त हैं।

**मुख्य शब्द** – गौ, वेद, धन, पशु, पूज्या, अवध्न्या, मंगलकारी, गोमय

**प्रस्तावना –**

आर्य जाति में सदा गो की प्रतिष्ठा और पूजा होती आई है।[1] परवर्ती साहित्य में गो को घृतक्षीरप्रदा,[2] लोको की माता,[3] समस्त भूतों की प्रतिष्ठा[4] विश्वमूर्ति,[5] परमवित्र,[6] पूजनीय।,[7] स्वर्ग की सोपान,[8] सब भूतों पर अनुकम्पा करने वाली,[9] विश्वरूपा, [10] यज्ञ का भरणा करने वाली,[11] मनुष्यों की बंधु,[12] सवं देवमयी,[13] लोकाधिवासिनी,[14] दिव्य तेजस्वरूपा,[15] मंगलायतन,[16] यज्ञ स्वरूप,[17] अन्नस्वरूपा,[18] और सुरभिपुत्री,[19] कहा गया है। गो की इस महता का प्रतिपावन ऋग्वेद में भी हुआ है।

भारतीय साहित्य में वेद से लेकर आज तक गो को एक महान घन माना जाता रहा है।[20] ऋग्वेद में गोधन का बहुधा उल्लेख 'गवां रायः',[21] गव्या राधांसि[22] गव्यं राधः,[23] गोमत् वसुः,[24] 'गव्या मघानि',[25] उस्त्रियं वसु,[26] सुगव्यं रयिम्[27] गोमत रामः,[28] ..... रयिम्[29] गोमत् भयम,[30] गोमग्त बाजम,[31] गोमत् ध्यग्तःज, [32] योजत इविणम्[32], उस्त्रियाणा निधि, [33] गोमत् रत्नम्[34], गोमयं बसु, [35] गोमत् श्रयः,[36] आदि शब्दों द्वारा हुआ है। गायों के धन की वृद्धि होती है।[37] गोधन के कारण अश्विद देवों को गोमय (गोमध) कहा गया है।[38] सो गायों से युक्त धन (प्रातवियनं रयिम्) का भी उल्लेख मिलता है।[39] गो को भगवतो (ऐश्वर्यवतो) कहा गया है।[40], इसके अतिरिक्त जिस धन में गाय प्रधान हों उसे अत्यंत कमनीय माना गया है।[41]

अथर्ववेद में शाला का एक विशेषण पयस्वती व घृतवती के साथ गोमती भी प्रयुक्त हुआ है।[42] इससे प्रकट है कि गोधन से ही शाला की समृद्धि मानी गई है। यही नही गो को सम्पतियों का घर भी कहा गया है।[43] इसलिए इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि अपने स्रोक्त को सुखी बनाने के लिए कब गो रूप धन में रखेगा।[44]

महाभारत में गो को सब प्रकार के सुख देने वाली सब प्राणियों की माता कहा गया है –

**मातर : सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः।**[45]

लोक में भी गो को माता के समान समादर प्राप्त है। ऋग्वेद स्पष्ट रूप से गो के मातृत्व की कल्पना का आधार मिल जाता है। गो के मातृत्व का उद्घोष करने वाला सबसे प्रसिद्ध मंत्र आठवें मण्डल का है जिसमें गो को रूद्रों, माता, वसुओं की पुत्री, आदित्यों की भागिनी, अमृतस्वरूपा और निष्पाप कहकर उसकी हिंसा का निषेध किया गया है।[47] समस्त प्राणियों को जीवन प्रदान करने वाली होने से गो को मरूतो के देवगण की माता घोषित किया गया है।[48] ..... वत्सरी (वत्सतरः अस्या अस्ति इति)[49] व धेनु (प्रीणयित्री) नाम भी उसके मातृत्व उद्घोषक कहे जा सकते है। अर्थवेद में उत्तम माता को गो के सामान कहा..... है[50]। जैसे मांसाहारी का मन मांस में, सुरासेवी का सुरा में, जुआरी का जुअर में, ज्यादा गो का चित्त बछड़े में निरह होता है और गोदे मातृत्व का आदर्श हम सबमें।

ऋग्वेद में गो को अवन्ध्या (कहा गया है; परन्तु स्पष्ट रूप से कहीं अभक्षणीया नहीं कहा गया है। अथर्ववेद में गो को अवश्य हो भक्षणीया कहा गया है। ऋग्वेद में उस पर मातृत्व का प्रारोप किया गया है। इसलिए उसके इस गुरण से उसकी ग्रभक्षणीयता ही ध्वनित होती है। एक मंत्र में गो के समान माता पृथ्वी को भक्षण करने (अश्–भोजने) का उल्लेख मिलता है। जैसे पृथ्वी का भक्षण पृथ्वी पर उत्पन्न अन्न, फलादि खाने को कहा जा सकता है वैसे ही गो का भक्षण उससे प्राप्त दुग्ध, घृतादि खाने के रूप में होगा ।

**गो से प्राप्त अन्न**

ऋग्वेद में गो से प्राप्त अन्नों का प्रभूत रूप से वर्णन मिलता है। गो प्रदत्त दूध प्रादि से युक्त अन्न को एक मंत्र में महा धन कहा गया है। इन्द्र गो से प्राप्त

अन्न का रक्षक है। गो दो प्रकार से अन्न प्रदान करती है––प्रथमतः दुग्धादि के रूप में और द्वितीयत; कृषिकर्म में सहायक बन कर। दोनों प्रकार से वह राष्ट्र का पोषण करती है। दुग्धादि पदार्थ व कृषिजन्य धान्यों को ही कदाचित् क्रमशः वशान्न और उक्षान्न कहा गया है। इन सब प्रकार के पदार्थों के भक्षक होने से अग्नि को विश्वाद कहा गया है।[1]

अन्न प्रदात्री होने से ही गो को अन्न कहा है तथा उसकी एक संज्ञा इळ भी है इल्डा को भी अन्न कहा गया है। गो से प्राप्त होने वाले दुग्ध, दधि, घृतादि के ऋग्वेद में वर्णन प्राप्त है।

**गोदुग्ध और उसका उपयोग**

अथर्ववेद में गाय के दूध को देवताओं का भाग तथा जल, का रस कहा गया है। यह सोम से मिल कर उसे दिव्य अन्न (देवम–प्रन्धः) बना ओषधि और घृत का रस कहा है गोएँ दूध से मनुष्यमात्र की वृद्धि करती हैं। दूध से दुबुद्धि नष्ट होती है अतः सद्बुद्धि बढ़ती है।

आधुनिक शरीर शास्त्री गोदुग्ध को पूर्ण भोजन मानते हैं। ऋग्वेद में भी दूध को परिपक्व कहा गया है जो अपरिवव (ग्रामासु) गायों में रहता है यही नहीं, जीवन के लिए उपयोगी होने से उसे अमृत तक कह दिया है।

आयुर्वेदिक ग्रन्थों के अनुसार गोदुग्ध को स्वादु, शीत, मृदु, स्निग्ध, गुरु, मन्द, प्रसन्न आदि दस गुणों से उपेत बतलाया गया है। ऋग्वेद के अनुसार भी गोदुग्ध पुष्ट करता है'' और शक्तिवर्द्धक होता है।

दूध और घृत प्रदान करने के कारण गो को 'पयस्वती' और 'घृताची' कहा गया है वह औषधियों के सार भाग को दुह कर दुग्ध के रूप में प्रदान करती है। गायें नदियों के किनारे चरती हैं, ओषधियाँ खाती हैं, इसीलिए सारे सुस्वादु

भोज्य तत्व अकेले दुग्ध में ही प्राप्त हो जाते हैं।

**महि ज्योतिनिहितं वक्षरणास्वामा पक्वं चरति विभ्रतीः गोः।**

**विश्वं स्वाद्म सतमुत्रियायां यत्सोमिन्द्रो प्रदद्याद्भोजनाय**

गोदुग्ध प्रिय व काम्य कहा गया है। चाणक्य के विचार में गाय के स्वभाव से भली प्रकार परिचित होता है, वही उसके सात्विक दूध का वास्तविक उपभोग करता है। गाय का दूध स्वादिष्ट होता है अतः अतिथि भोजन करने से पूर्व गाय के दूध से बने पदार्थो को खाये है।

गो यज्ञ के लिए अत्यन्त आवश्यक मानी गई है। ऋग्वेद में यज्ञ में (संभवतः दूध दुहने के लिए) गोनों को रोकने का उल्लेख मिलता में उनको रोकने का धन्य प्रयोजन उनका पूजन, सत्कार प्रादि करना भी हो सकता है। अथर्ववेद के अनुसार मूढ़ राक्षस याजक तो गो व कुत्तों के अंगों से वश भी किया करते थे;

परन्तु सामान्य लोग गो का यज्ञ में सत्कार ही किया करते थे और गोदान भी यज्ञ का आवश्यक अंग माना गया है।

**एतवा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं मांस वा तदेव नाश्नीयात्।**

इस मंत्र से पहले अतिथि से पूर्व खाने वाले यजमान को होने वाली हानियों का अतिथि से पूर्व न खाने का शौर अतिथि के खा लेने पर खाने का विधान है। अतः उस प्रसंग में अर्थ होगा– 'गोदुग्ध और सारभूत ब्रश को ही प्रतिथि से पूर्व न खावे' सभवतः यह आशय प्रतीत होता है कि अतिथि (देवातिथि अग्नि व मनुष्य अतिथि) को भोजन कराने (अग्निहोत्र करने व अतिथि को खिलाने) के पूर्व कल गायें अपने दूध से कृश मनुष्य को पुष्ट करती हैं, निस्तेज को सतेज करती हैं और घर को कल्याणमय बनाती है, अतः सभ्यों में उनकी प्रशंसा होती है।

ऋग्वेद में यातना देकर दूध निकालने वाले को विषपान करने वाला कहा गया है। दूध के महत्व को देखकर अथर्व वेद के मंत्र में दूध के रूप में बल का दोहन करने वाली गाय होने की कामना की गई है और यह भी कामना की गई है कि घर सदा दूध से भरे हुए हो और उन में घड़े भर कर दूध रहे गायों के व्रज दूध पीने के उत्तम स्थान माने गए हैं।

**गोमय व गोमूत्र**

पौराणिक काल में गोबर 'लक्ष्मी का निवास माना गया है। यज्ञशाला व घर की शुद्धि के लिए गोबर व गोमूत्र का उपयोग अब भी होता है; परन्तु ऋग्वेद में इनके ऐसे उपयोग का कोई उल्लेख नहीं मिलता। केवल एक मन्त्र में जलते हुए गोबर के धुएँ (शकमय धूमम्) का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि यदि दासी गोमूत्र व गोबर (पल्पूलन शकृत्) को इधर उधर फेंक दे तो उसके विरूप सन्तान होती है। ऋग्वेद में एक स्थान पर श्गोमय वस' उल्लेख है। सम्भव है इन शब्दों से गोबर को धन के रूप में (व्यंजना से गोधन) स्वीकार करने की ओर संकेत हो जैसा कि लोक में अब भी माना जाता है। गोमय का गोबर अर्थ में प्रयोग भी होता है गो–चर्म का

प्राचीन काल में मरी हुई गो के चर्म का उपयोग कर लिया जाता था। उसे रथ पर मँढने से रथ सुदृढ़ हो जाता था। 'गोभिः संनद्धः रथः' उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। सायरण के विचार से चमड़े की ताँत से धनुष की डोरी भी बनाई जाती थी अथर्ववेद में गोचर्मवेष्टित ढोल का भी उल्लेख मिलता है ।

ऋग्वेद में गोचर्म (गो त्वचि) पर सोम रस का पात्र रखने का भी उल्लेख मिलता है। गो त्वचा को सोमशोधक भी माना गया है।

**गौहत्या का निषेध –**

ऋग्वेद में गो को अवध्या कहा है। अर्थवेद में तो गो की एक पवित्र पशु के रूप में पूजा तक प्रचलित तक प्रचलित हो चुकी है। (पवे–12।4।5) शतपथ ब्राह्मण (3/1/2/21) में यह कहा जाता है कि मांसभक्षक व्यक्ति कुख्यात बनकर पृथ्वी पर फिर जन्म लेता है।[53] शतपथ ब्राह्मण में यह भी कहा गया है कि सामान्यतः वृषभ का मांस भी अभक्ष्य है।[54]

ऋग्वेद में स्पष्ट शब्दों में गोहत्या का निषेध किया गया है।

वैदिक कर्मकाएड के ग्रंथ यजुर्वेद में भी कई स्थानों पर गो की हिंसा का निषेध किया गया है।[55] इस प्रसंगों में गो का आदिति नाम से प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद में अध्न्या[58] (अहिंसा) की तरह अदिति (दो अवखण्डने धातु से जिसका छेदन न किया जाये) शब्द का प्रयोग प्रचुर रूप में देखा जाता है। ये दोनों विशेषण गो की अवध्यता को सूचित करते है। महाभारत में गोवध को अध्न्या शब्द से ही अवैदिक सिद्ध किया गया है– अध्न्यता इति गवां नाम क एता हन्तुमहंति।[60] यज्ञ का एक नाम अध्वर (हिंसाकर्म–रहित) है। अतः यज्ञ मेंगोवध नही होता था। ऋग्वेद में तो युद्ध काल में भी गायों की रक्षा का प्रबंध करने की बात कही गई है।[61]

आजकल दीपावली के अवसर पर कृषक पत्नियां हंसिया को गौ–पूजन के समय गो के खुरो से छुपाती है। इस क्रिया के पीछे मनोगत भाव यह होता है शस्त्र गो को हानि न पहुंचाये। लोक प्रचलित इा पूजा का आधार भी ऋग्वेद में ढूंढा जा सकता है जहां तीखी धार वाले शस्त्रों से गायों को दूर रखने[62] और इस प्रकार उनकी रखा करने का आदेश दिया गया है क्योंकि शस्त्र से गाय के अंग कट सकते है।[63]

गो को हानि पहुंचाने वाले शस्त्रों को दूर रखने की बात तो ऊपर कही गई, परंतु एक मंत्र में इन्द्र के व्रज का विशेषण 'गव्युः' भी मिलता है।[64] इस विशेषण से ऐसा ज्ञात होता है कि शस्त्र का उपयोग रक्षण मानकर यहां वज्र को 'गो' को सुरक्षा करने वाला कहा गया।[66] उपर्युक्त प्रसंगो के विषय में यह कहा जा सकता है कि रूद्रवत (रौद्र) स्वभाव वाले व्यक्ति के हाथ में शस्त्र गो आदि पशुओं के वध का कारण भी बन सकता है अतः वह दूर ही रहे, परंतु इन्द्र जैसे विवेकशील वीर के हाथ में शस्त्र मनुष्यों की रक्षा की तरह उपयोगी पशुओं की रखा का साधन हो सकता है।

अतः स्पष्ट होता है कि गोवध ऋग्वेद की दृष्टि से निषिद्व व अविवाहित कर्म है।

**गोपालक को दण्ड**

ऋग्वेद में गायों की हिंसा न करने वाले (हिंसा से रक्षा करने वाले) मरूतों के बल को प्रशंसनीय कहा गया है।[67] साथ ही जो अध्न्या के दूध को नष्ट करता है अर्थात गोवध करता अथवा ऐसी चोट पहुंचाता है जिससे उसका दूध नष्ट हो जाय, तो उसके सिर काटने की व्यवस्था दी गई है।[68] गाय को यातना देने वाले को वर्ष भर तक गोमुग्ध न पीने का प्रयत्न करने पर दण्ड स्वरूप उसके मर्मस्थल को बेधने की बात भी कही गई है।[69]

**निष्कर्ष –**

भारतीय संस्कृति में 'गो' पुरातन काल से वंदनीय रही है और आज तक है। 'गोधन' जिसके पास वह समृद्ध व सम्पन्न है। उसकी महत्वता सनातन काल से है।

*व्याख्याता
सामान्य संस्कृत,
राजकीय आचार्य संस्कृत, महाविद्यालय
भरतपुर, (राज.)

**संदर्भ ग्रन्थ**

1. वैसा– पृ. 356
2. मभा अनु. पर्व 80/1
3. 'लोकाना मातरश्चवै गावः', मभा अनु.प. 125/62
4. मभा अनु.पर्व 78/5, अनु. 292/15
5. मपु 277/12
6. मभा–अनु. पर्व 78/7, अनु. 292/18
7. पपु–सृष्टिखंड 50/131
8. वही 292/18
9. वही 50/132
10. मभा–अनु.पर्व 81/32
11. मभा–शांति पर्व 263/17
12. पपु–50/155 (सृष्टिखंड)
13. पपु–50/132
14. मपु 277/13
15. मभा–पर्व 81/17
16. मभा–अनु.पर्व 69/8
17. मभा–अनु.पर्व 83/17
18. यद्धिकिंचान्नं गौरवतत्–शब्रा 2/2/2/1/3
19. अदितिर्देवमाता च सुरभी च गवां प्रसूः देभापु 91/124 तथा बभूवकामधेनूनां सहसा लक्ष कोटयः। यावन्तस्तत्र गोपाश्च सुरम्या लामकूपतः।। देभापु–9.49/11
20. कैलाश चन्द विद्यालंकार– 'वेदो में महत्व' शीर्षक निबंध कल्याण (गोरखपुर) वर्ष 25 स. 11 पृ. 1422

21. ऋ. 1/33/1
22. ऋ. 6/44/12, 5/79/7
23. ऋ. 7/92/, 5/52/17
24. ऋ. 7/94/9
25. ऋ. 7/67/9
26. ऋ. 8/4/16
27. ऋ. 1/162/22
28. ऋ. 5/57/7, 7/77/5
29. ऋ. 5/4/11 8/5/10, 8/6/9 तु. 10/38/2
30. ऋ. 1/11/3
31. ऋ. 5/23/2, 281/6, 82/24, 8/25/20
32. ऋ. 7/27/5
33. ऋ. 1068/6
34. ऋ. 7/75/8
35. ऋ. 10/622
36. ऋ. 1/9/7
37. गोभिः रयि पप्रथत्–ऋ 2/25/2 मंत्र पर 'गोज्ञान कोश'

    प्राचीन खण्ड प्रथम भाग पृ. 149 पर टिप्पणी द्रष्टव्य
38. ऋ. 7/71/1
39. ऋ. 1!159/5, 449/4, 9/67/6
40. ऋ. 1/164/40, अवे (9/10/20) में यह मंत्र गोदेवत है। डा. वासु देवशरण अग्रवाल ने अध्न्या (गो) को देवता माना है।
41. गोआग्रारातिम–ऋ. 21/1/16
42. अवे 3/12/2
43. अवे 11/1/34– गो से दूध, दही, घृत आदिपदार्थ मिलते है। इनसे यज्ञ किया जाता है साथ ही इनका उपयोग करने से शरीर पुष्ट होता है व दीर्घायु प्राप्त होती है। यज्ञ से प्रकजा का पोषण होता है। इसलिए मंत्र मे गो को 'रयीरणां सदनम्' कहा गया है क्योंकि सब प्रकार की सम्पति गो के आश्रय में रहती है।

भारत कृषिप्रधान देश है अतः गो के बछडे भी समृद्धि के कारण है। गोबर व गोमूत्र उतम खाद के रूप मे प्रयुक्त होते है। पृथ्वी तो धन का श्रगार है ही। अतः पृथ्वी का भी कहा जाता है।

44. ऋ. 8/13/22

45. मभा–अनु.पर्व 69/7

46. गोको–द्वि भा.

47. ऋ. 8/101/15

मंत्र में आदिति रूप गो का रहस्यात्मक वर्णन है। यहां आपाततः पशु गो का मातृत्व सुस्पष्ट है।

48. मरूतों के लिए प्रयुक्त गोमातरः ऋ. 1/85/3 तथा पृश्निमातरः 1/23/10, 38/4, 85/2, 89/7, 5/57/2, 3/59/6, 8/7/3, 17,9/34/5

49. य. 24/5, 9,14 तैसे., मैं सं. काठकसं., कठकपिष्ठल सं. में अनेक स्थलों पर प्रयोग मिलता है।

51. अवे 6/70/1, मंत्र 2 व 3 भी द्रष्टव्य।

52 अवे 4/39 के मंत्र 2,4,6,8 में पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौः तथा दिशाओं को धेनु हव क्रमशः अग्नि, वायु, आदित्य व चन्द्र को वत्स कहा गया है, इसी तरह अवे 8/10 में भी इन्द्र यम, सोम, मनु वैवस्वत, कुबेर, चित्र रथ तक्षक आदि विराज धेनु के वत्स कहे गये है।

53. वैदेशा, डॉ. सूर्यकांत, पूष्ठ 312–313

54. धेन्वनडुहयोनश्परयात्–शपथ ब्राह्मण 3/1/2/21

55. ऋ. 8/101/15

56. ऋ. 1/11/4/8

57. यवेवा 13/43, 13/49 आदि

58. ऋ. 7/84/4, 8/102/19, 7/68/9, 10/60/11, 8/75/8 आदि

59. ऋ. 8/101 15, 1/89/10, 6/50/1, 5/42/2 आदि

(लगभग 80 बार प्रयुक्त। सर्वत्र गो के लिये तो प्रयुक्त नहीं है, परंतु अखण्डनीय अर्थ सुरक्षित है।)

60. मभा, शांतिपर्व 262/47

61. ऋ. 1/33/5 .... द्वि. भा. में पू. 108 पर उक्त मंत्र का पं. सातवलेकर का अर्थ व टिप्पणी द्रष्टव्य।

62. विपर्वशश्चकर्त गामिवासिः। ऋ.10/79/6

63. संते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्युः। ऋ. 641/2

64. ऋ. 1/51/14